14

पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया

(Process of Curriculum Development)

पाठयक्रम के प्रत्यय का अध्ययन करने से विदित होता है कि पाठयक्रम के आधार अनेक, प्रतिमान अनेक, उपागम अनेक, सिद्धान्त तथा नियम अनेक हैं। क्योंकि शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है इसलिए सामाजिक भिन्नता को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का स्वरूप विकसित किया जाता है। पाठ्यक्रम का प्रकरण तथा प्रत्यय अधिक जटिल प्रतीत होता है। पाठ्यक्रम के मूल तत्वों के आपसी सम्बन्ध के स्वरूप में विविधता होती है। परन्तु इन मूल तत्वों–उद्देश्य, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियाँ तथा मूल्यांकन के सम्बन्ध के विशिष्ट स्वरूप के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा सकता है। इन तत्वों को चक्रीय क्रियाओं के रूप में निरन्तर प्रयोग किया जा सकता है। इन तत्वों को चक्रीय क्रियाओं के रूप में निरन्तर प्रयोग किया जाता है। जिससे पाठ्यक्रम द्वारा समाज में राष्ट्र की भावी आवश्यकताओं के लिये नागरिकों को शिक्षा द्वारा तैयार कर सके।

पाठ्यक्रम निर्माण के सोपान
(Steps for Curriculum Development)

पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया को पाठ्यक्रम के मूल तत्वों के आधार पर विकसित किया गया है। जिसमें तत्वों का अनुसरण किया जाता है–

1. परिस्थितियां का विश्लेषण करना,
   (Analysis of the Situation)
2. उद्देश्यों की पहिचान तथा उनका चयन करना,
   (Identification and Selection of Objectives)
3. पाठ्यक्रम का चयन एवं व्यवस्था करना,
   (Selection and organizatioin of content)
4. शिक्षण विधियों का चयन एवं उनकी व्यवस्था करना, तथा
   (Selection and organization of methods)
5. परीक्षण एवं मूल्यांकन विधि का निर्धारण करना।
   (Assessment and Evaluation system)

प्रथम सोपान परिस्थितियों का विश्लेषण
(Analysis of the Situation)

अधिकांश लेखकों एवं शिक्षा शास्त्रियों के चार सोपानों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार है–उद्देश्यों का चयन करना, पाठ्यवस्तु का चयन करना तथा उसकी व्यवस्था करना, अधिगम अनुभवों हेतु शिक्षण विधियों का चयन करना तथा उनकी व्यवस्था करना, तथा मूल्यांकन, एवं परीक्षा, प्रणाली का निर्धारण करना आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों का मत है कि इन सोपानों का स्वरूप सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर होता है। सामाजिक प्रक्रिया बदनले से शिक्षा तथा पाठ्यक्रम का प्रारूप भी बदलता है। इसलिये पाठ्यक्रम निर्माण का प्रमुख सोपान–'परिस्थितियों का विश्लेषण करना' है। इस सोपान के बिना पाठ्यक्रम का स्वरूप तथा अन्य सोपानों का सम्पादन नहीं किया जा सकता है। इन सोपानों की क्रियाओं का विभाजित किया जाता है। छात्र का निदान करना, शिक्षा की प्रक्रिया की कमजोरियों तथा अच्छाइयों का अवलोकन तथा समीक्षा करना। इस सोपान के अन्तर्गत सभी घटकों की समीक्षा की जाती है जिससे सम्पूर्ण परिस्थिति के सम्बन्ध में जानकारी हो सके और उसका समुचित उपयोग पाठ्यक्रम के निर्माण में किया जा सके। इसे 'पाठ्यक्रम नियोजन' की भी संज्ञा दी जाती है।

पाठ्यक्रम निर्माण करना ऐसी प्रक्रिया नहीं है जिसको एक बार सम्पन्न करने के बाद समाप्त हो जाती है अपितु इसमें निरन्तर परिवर्तन करना आवश्यक होता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माण एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का स्वरूप चक्रीय होता है अर्थात् इसका अन्त नहीं होता है। पाठ्यक्रम के निर्माण के बाद जब से लागू किया जाता है तब छात्रों के मूल्यांकन तथा परीक्षण से ज्ञात होता है कि अभी किस प्रकार के सुधार की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया सर्जनात्मक होती है जिसमें तार्किक एवं अनुभवजन्य दोनों प्रकार के चिन्तन की आवश्कता होती है।

सोपान की क्रियाओं की प्रमुख रूप से दो परिस्थितियों में विभाजित करते हैं–

1. आन्तरिक परिस्थितियाँ तथा
2. बाह्य परिस्थितियाँ

1. आन्तरिक परिस्थितियों का सम्बन्ध उन सभी घटकों तथा क्रियाओं से होता है जिनका प्रयोग पाठ्यक्रम निर्माण में किया जाता है। इस सोपान के अतिरिक्त अन्य सभी सोपानों की क्रियाओं का विश्लेषण करते हैं जिससे पाठ्यक्रम निर्माण में किस प्रकार के सुधार की आवश्यकता है इसका बोध होता है। उद्देश्यों की उपयुक्ता, पाठ्यक्रम की सार्थकता, शिक्षण-विधियों की प्रभावशीलता तथा मूल्यांकन के निष्कर्षों का अध्ययन किया जाता है।

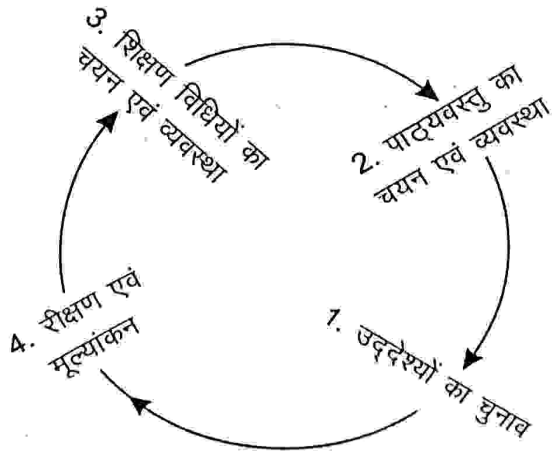

आन्तरिक परिस्थितियों के विश्लेषण में शिक्षक, छात्र, विद्यालय का वातावरण तथा विद्यालय तथा विद्यालय भवन एवं पाठ्य सहगामी क्रियाओं के लिये साधन उपलब्धता को भी ध्यान में रखना होता है। आन्तरिक परिस्थितियों के लिये प्रधानाचार्य की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। किसी शिक्षा संस्था के प्राचार्य के बदलने से सम्पूर्ण विद्यालय का वातावरण बदल जाता है। यह परिवर्तन तुरन्त दिखाई देता है। और सभी चर्चा भी करते हैं। विद्यालय का वातावरण, शैक्षिक कार्यों को अधिक प्रभावित करता है। छात्रों के परीक्षाफल उत्तर हो जाते हैं, शिक्षक अपने कार्यों में रूचित लेने लगते हैं तथा छात्र अधिक अनुशासित एवं अध्ययन में रूचि लेने लगते हैं। प्रचार्य व्यक्तिव्त एवं कार्यशैली का विद्यालय वातावरण पर सीधा प्रभाव पड़ता है जबकि शिक्षक के व्यक्तित्व एवं कार्यशैली के प्रभाव उसके कक्षा के छात्रों एवं कक्षा वातावरण तक सीमित रहता है। परिस्थिति विश्लेषण में इस बातों को ध्यान में रखना होता है।

2. बाह्य परिस्थितियों के अन्तर्गत—सामाजिक परिवर्तन, राजनैतिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन तथा सत्ता परिवर्तन को सम्मिलित किया जाता है। पाठ्यक्रम के निर्माण के समय सामाजिक परिवर्तन को ध्यान में रखकर उद्देश्यों को बदला जाता है क्योंकि परिवर्तन के साथ सामाजिक आवश्यकतायें भी बदल जाती है। राजनैतिक परिवर्तन या सत्ता परिवर्तन के देश की नीतियों में परिवर्तन आना स्वभाविक होता है। प्रवेश या राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता परिवर्तन हो जाता है तक सभी नीतियाँ भी बदलती है परिणामस्वरूप शिक्षा का रूप भी बदलता है। अंग्रेज़ों को बाबुओं की आवश्यकता भी इसलिये पाठ्यक्रम स्वरूप आज से बिल्कुल ही भिन्न प्रकार था।

आज नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों के अपेक्षा आर्थिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता है इसलिये आज व्यावसायिक पाठ्यक्रमों पर अधिक बल दिया जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी व्यावसायिक शिक्षा की प्राथमिकता दी है। ऐसे पाठ्यक्रमों की और अधिक दौड़ लगी हुई है जिससे छात्र जीवन में अधिक धनोपार्जन कर सके। मेडीकल, इन्जीनियरिंग तथा तकनीकी की ओर अधिक रुझान है। वैज्ञानिक आविष्कारों के परिणामस्वरूप कम्प्यूटर के प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों को आरम्भ किया गया है।

इस परिस्थितियों में समाज तथा राष्ट्रीय समस्याओं का विश्लेषण करना भी आवश्यकता होती है। समाज की समस्याओं को हल करने में शिक्षा की भूमिका अहम हो गई है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन एवं नियन्त्रण के लिये एक शक्तिशाली यंत्र माना जाता है। राष्ट्र तथा समाज के समक्ष जनसंख्या की वृद्धि तथा वातावरण प्रदूषण की समस्या अहम है इनके समाधान के लिये पाठ्यक्रमों का निर्माण किया गया है—जनसंख्या की शिक्षा, वातावरण प्रदूषण सभी पाठ्यक्रम कई विषयों में विभिन्न रूपों में विकसित किया गया है। और उन्हें पढ़ाया भी जाता है।

आन्तरिक परिस्थितियों के विश्लेषण में पाठ्यक्रम में सुधार के लिए दिशा मिलती है। जबकि बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण में विकास एवं नये पाठ्यक्रम को आरम्भ करने में दिशा मिलती है।

द्वितीय सोपान–उद्देश्यों को पहिचानना तथा उनका चयन करना (Identification and Selection of Objectives)

पाठ्यक्रम निर्माण का द्वितीय सोपान—उद्देश्यों का चयन करना है। शिक्षा तथा पाठ्यक्रम निर्माण उद्देश्य एक ही होते हैं। अत: शिक्षा के लिये उद्देश्यों को पहिचानने का अर्थ होता है अपेक्षित उद्देश्यों का प्रतिपादन करना है। उद्देश्यों के प्रतिपादन कई स्त्रोतों का उपयोग किया जाता है। इसके प्रमुख स्त्रोत इस प्रकार है—

(अ) परिस्थिति विश्लेषण के आन्तरिक तथा बाह्य घटकों की पहिचान।

(ब) शिक्षा के दार्शहिनक, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक आधार।

(स) छात्रों के विकास की अवस्थाओं की आवश्यकता।

(द) राष्ट्र के भावी नागरिकों के कौशल एवं क्षमताओं का स्वरूप।

शिक्षा के द्वारा बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। परन्तु विकास दिशा का निर्धारण उपरोक्त स्रोतों से किया जाता है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के प्रमुख पक्ष इस प्रकार है–

1. ज्ञानात्मक विकास (Cognative development)
2. भावात्मक अथवा संवेगात्मक विकास (Affective development)
3. क्रियात्मक तथा कौशलों का चयन (Psychomotor development)
4. सामाजिक विकास (Social development)
5. शारीरिक विकास (Physical development)

इन उद्देश्यों का स्वरूप अधिक व्यापक तथा वृहद होता है शिक्षा द्वारा प्राथमिक कक्षा से विश्वविद्यालयों की शिक्षा तक इन्हीं पक्षों के विकास का प्रयास किया जाता है। इन विकास पक्षों के आधार पर शिक्षा के पाँच प्रकार के उद्देश्य होते हैं।

शिक्षा के उद्देश्यों का वर्गीकरण

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य, 2. भावात्मक उद्देश्य, 3. क्रियात्मक उद्देश्य, 4. सामाजिक उद्देश्य तथा 5. शारीरिक विकास उद्देश्य। पाठ्यक्रम का प्रारूप विशिष्ट होता है। जिसका निर्माण विशेष स्तर के छात्रों के लिये विशिष्ट सामाजिक सन्दर्भ के लिये किया जाता है। इसके लिये आवश्यक होता है इन उद्देश्यों का चयन करके व्यावहारिक रूप में लिखा जाय जिसे विशिष्ट उद्देश्य कहते हैं। इन विशिष्ट उद्देश्यों के लिये पाठयवस्तु की सहायता से विशिष्ट अधिगम परिस्थिति उत्पन्न की जा सकती है। पाठ्यवस्तु के स्वरूप का निर्धारण विशिष्ट उद्देश्यों तथा विशिष्ट अधिगम परिस्थिति के आधार पर किया जा सकता है। यह प्रक्रिया त्रपदी होती है–

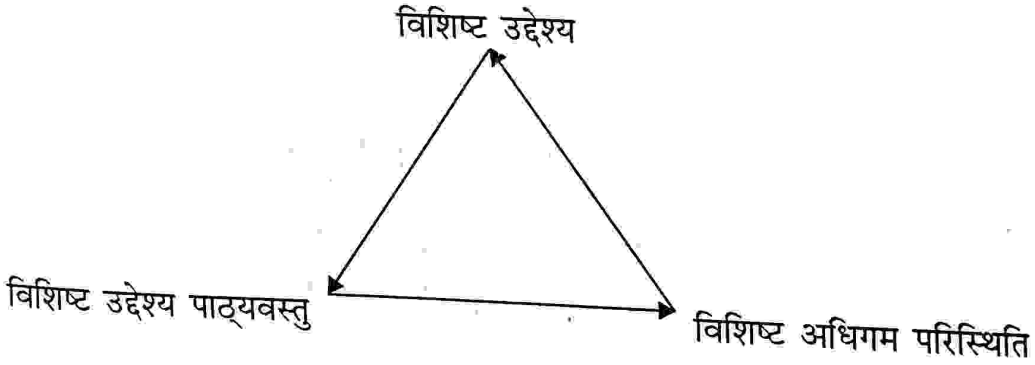

विशिष्ट पाठ्यवस्तु का भी अपना स्वरूप होता है जो विशिष्ट उद्देश्यों के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है। सूर तथा तुलसी वही दोहे प्राथमिक स्तर तथा वही दोहें विश्वविद्यालय स्तर पर पढ़ाये जाते हैं। पाठ्यवस्तु विशिष्ट है परन्तु उससे कई उद्देश्य प्राप्त किये जाते हैं। प्राथमिक स्तर पर स्मृति व्यक्ति का विकास और उच्च स्तर पर सौंदर्यानुभूति का विकास किया जाता है। इनके लिये शिक्षक को विशिष्ट अधिगम परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होती हैं। अत: अधिगम-परिस्थितियों के विशिष्ट उद्देश्यों के रूप में समझना आवश्यक होता है। पाठ्यक्रम के निर्माण में उद्देश्यों के विशिष्ट रूप के साथ विशिष्ट अधिगम-परिस्थितियों का चयन करना होता है। ज्ञानात्मक पक्ष का वर्गीकरण तथा पाठ्यवस्तु की प्रकृति का विवेचन यहाँ किया गया है।

1. ज्ञानात्मक पक्ष का वर्गीकरण तथा पाठ्यवस्तु-

ब्लूम ने इसे छ: वर्गों में विभाजित किया। इस पक्ष के साभी वर्गों की विशिष्ट सीखने की उपलब्धियों तथा पाठ्य-वस्तु की प्रकृति निम्नलिखित चार्ट में प्रस्तुत किया गया है।

(ब) सीखने की उपलब्धियाँ (Learning Outcomes)

इन उद्देश्यों की प्राप्ति से सीखने की उपलब्धियाँ भी अलग-अलग होती हैं—

1. तथ्यों की सूचना (Factual Information)—ज्ञान तथा बोध उद्देश्यों की प्राप्ति से होती है।

2. प्रत्ययों की अनुभूति (Concept formation)—बोध उद्देश्य से विश्लेषण उद्देश्य तक की प्राप्ति से सम्भव होती है।

3. सामान्यीकरण (Generalization)—बोध उद्देश्य से संश्लेषण तक की प्राप्ति से होता है।

4. समस्या-समाधान (Problem solving)—प्रयोग उद्देश्य से मूल्यांकन उद्देश्यों तक की प्राप्ति से होता है।

5. सर्जनात्मक चिन्तन (Creative thinking)—का विकास विश्लेषण से मूल्यांकन उद्देश्यों तक की प्राप्ति से होता है।

6. सिद्धान्तों तथा व्यवस्थित ज्ञान (Theories and Systematized Knowledge) की क्षमताओं का विकास भी विश्लेषण से मूल्यांकन उद्देश्य की प्राप्ति से होता है।

सीखने की उपलब्धियों के भी स्तर होते हैं जो विभिन्न शिक्षण-उद्देश्यों की प्राप्ति से विकसित होते हैं। शिक्षण उद्देश्यों के दो प्रमुख आधार हैं—

1. पाठ्यवस्तु का स्वरूप तथा

2. छात्रों की आवश्यकताओं एवं उनके स्तर को समझने के लिये सीखने की उपलब्धियों का विशेष महत्व होता है। छात्रों के स्तर का निर्धारण सीखने की उपलब्धियों से किया जाता है, जिसमें शिक्षण उद्देश्यों की जानकारी होना आवश्यक होता है। शिक्षक अपने शिक्षण उद्देश्यों की जानकारी ज्ञान उद्देश्यों से लेकर संश्लेषण उद्देश्य तक होनी चाहिये।

3. सीखने के उद्देश्य को व्यावहारिक रूप में लिखना
(Writing Learning Objectives in Behavioural Terms)

उद्देश्य का निर्धारण, शिक्षण की क्रियाओं को विशिष्ट रूप में प्रस्तुत नहीं करता है। शिक्षण उद्देश्य से एक ही स्तर का बोध हो सकता है। अत: शिक्षण उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप (Behavioural terms) में लिखने पर अधिक बल दिया जाता है। उद्देश्यों का व्यवहारिक रूप अधिकगम की क्रियाओं को प्रधानता देता है।

उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखने की आवश्यकता
(Need for Writing Objectives in Behavioural Terms)

उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखने में निम्नलिखित लाभ होते हैं—

1. शिक्षण क्रियायें सीमित तथा सुनिश्चित हो जाती है।
2. अधिगम के अनुभवों की विशेषताओं को निर्धारित किया जाता है और मापन सम्भव होता है।
3. छात्र तथा शिक्षक दोनों विभिन्न प्रकार के व्यवहारों में अन्तर कर लेते हैं, जिससे शिक्षण व्यूह रचना के चयन में सुगमता होती है।
4. सामान्य तथा विशिष्ट रूप में सारांश प्रस्तुत किया जाता है, जो शिक्षण तथा अधिगम के लिये आधार प्रस्तुत करता है।

स्केफोल्ड (Scafold) के अनुसार उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने से शिक्षक को अधोलिखित सहायता मिलती हैं—

(अ) उद्देश्यों के विस्तार में।
(ब) परीक्षण प्रश्नों के चयन में।
(स) शिक्षण तथा अधिगम में सन्तुलन बनाये रखने में।
(द) सभी पक्षों से सम्बन्धित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये परीक्षा की व्यवस्था करने में।
(य) शिक्षण युक्तियों, व्यूह रचना तथा दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री के चयन में।

अधिगम-परिस्थितियाँ (Learning-Conditions)

अधिगम-परिस्थिति के लिये छात्रों के विकास क्रम और उस अवस्था की विशेषताओं को ध्यान रखा जाता है। विभिन्न अवस्थाओं पर बालक की रुचियाँ भी बदलती रही हैं क्योंकि उनकी आवश्यकताओ में परिवर्तन आता है। छोटे बालक कहानी सुनना तथा खेल में अधिक रुचि लेते हैं। इसलिये प्राथमिक स्तर पर ऐसी पाठ्य वस्तु सम्मिलित की जाती है जिसे कहानी के रूप में पढाया जा सके जिससे छात्रों की स्मृति का विकास हो सके।

उद्देश्यों के प्रतिपाद की प्रक्रिया अधिक जटिल है कुछ क्षेत्रों के लिये पाठ्यक्रम के लिये उद्देश्यों का चयन सार्थक नहीं है। कला और सामाजिक विषयों के उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना बहुत ही कठिन होता है। हिन्दी तथा अंग्रेजी साहित्य के पाठ्यक्रम में सौंदर्यानुभूति उद्देश्य को प्राप्त किया जाता है परन्तु शब्द अधिक भ्रामक है शिक्षक इसका क्या अर्थ समझता है। इसे कैसे प्राप्त किया जाय तथा कैसे मुल्यांकन किया जाय? इन प्रश्नों के उत्तर विशिष्ट तथा व्यावहारिक रूप में देना कठिन होता है।

उद्देश्यों के व्यावहारिक कथन भी भ्रामक तथा दोषपूर्ण होते हैं। रॉबर्ट मेगर की विधि द्वारा केवल छात्रों के व्यवहारों को महत्व नही दिया जाता है जबकि मानवीय अधिगम में मानसिक क्रियाओं एवं चिन्तन में महत्व नहीं दिया जाता है। ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक व्यावहारिक उद्देश्यों में अन्तर करना कठिन होता है। इसलिये पाठ्यवस्तु का निर्धारण करना भी उतना कठिन होता है।

उद्देश्यों के व्यावहारिक रूप में लिखने में स्पष्टता तथा शुद्धता होना आवश्यक है तभी पाठ्यक्रम्के प्रारूप को विकसित करने में सहायक होते हैं। उद्देश्य-केन्द्रित पाठ्यक्रम के लिये यह सोपान अधिक महत्वपूर्ण होता है।

तृतीय सोपान-पाठ्यवस्तु का चयन एवं उसकी व्यवस्था
(Selection and Organization of the Content)

पाठ्यक्रम निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण सोपान है आरम्भ में पाठ्यवस्तु को ही प्राथमिकता दी जाती रही है परन्तु अब भी इसका महत्व कम नहीं है। पाठ्यवस्तु-केन्द्रित पाठ्यक्रम के निर्माण में इसी सोपान को विशेष महत्व दिया जाता है।

पाठ्यवस्तु की व्याख्यया एवं अर्थापन ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति एवं मूल्यों के रूप में किया जाता है। इसकी व्यवस्था विद्यालय में पाठ्यक्रम के आधार पर की जाती है। विषय-वस्तुओं के मूल्यों के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार है। मूल्यों को आन्तरिक तथा बाह्य रूप में समझने का प्रयास करते हैं। मूल्य सीखने के बजाय व्यावहारिक अधिक होते हैं। जीवन यापन में व्यक्ति मूल्यों के सम्बन्ध में जानकारी होती है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि पाठ्यवस्तु, मानसिक योग्यताओं, कौशलों, अभिवृत्तियों, अभिरुचियों तथा मूल्यों के विकास का साधन है।

प्रत्येक पाठ्यवस्तु का अपना स्वरूप होता है जिसे विषय-वस्तु भी कहते हैं। जिसको शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न करने के लिये किया जाता है। इस खेत्र में 'ब्रूनर' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

पाठ्यवस्तु के स्वरूप के लिये सिद्धान्तों की व्यवस्था तथा शिक्षक विधियों का विवेचन किया है। प्रत्येक विषय (discipline) की अपनी पाठ्यवस्तु, अपने सिद्धानत, अपनी व्यवस्था तथा अध्यापन की अपनी निजी विधियाँ होती हैं जो अन्य विषय में भिन्न होती है। विज्ञान विषय में प्रयोग तथा निरीक्षण या प्रदर्शन विधि प्रयुक्त होती है जबकि इतिहास विषय में प्रवचन तथा कहानी विधि प्रयुक्त की जाती है। ब्रूनर का कथन है कि किसी विषय की पाठ्यवस्तु के लिये उसके स्वरूप को पहिचानना पाठ्यक्रम निर्माण के लिये सबसे अधिक बैध माना जाता है। उसका स्वरूप छात्रों के विकास की दृष्टि से और उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से समुचित होना चाहिये। ज्ञान को विभिन्न विषयों के शिक्षण से प्रदान करने की परम्परा रही है।

'ब्रूनर' का विचार है तथा सत्य भी है कि पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों का बहुत ही निकट सम्बन्ध होता है। यह कहना कठिन होता है कि कहाँ से आरम्भ करे तथा कहाँ पर समाप्त करे। शिक्षण विधियां ही छात्रों के व्यावहारिक परिवर्तन में सहायक तथा प्रभावी होती है। पाठ्य-वस्तु की उपादेयता पढ़ाने की विधियों पर आश्रित होती है। आज के पाठ्यकम से अधिक से अधिक तथ्यों को सम्मिलित करने का प्रयास किया जाता है। इसलिये पाठ्यवस्तु के स्वरूप को विकसित करने में अधोलिखित मानदण्डों को ध्यान में रखना चाहिये—वैधता का मानदण्ड, महत्व का मानदण्ड, अभिरुचि का मानदण्ड, तथा सीखने का मानदण्ड।

1. वैधता मानदण्ड से तात्पर्य यह है कि पाठ्यवस्तु का स्वरूप शुद्ध तथा स्पष्ट होना चाहिये। यह देखा गया है कि बहुत-सी पाठ्यवस्तु के तथ्य भ्रामक तथा अशुद्ध होते हैं इसलिये पाठ्यवस्तु के चयन तथा व्यवस्था में उसकी शुद्धता या वैधता की परख कर लेनी चाहिये।

2. महत्व मानदण्ड का अर्थ होता है कि पाठ्यक्रम के लिये पाठ्यवस्तु का चयन करते समय बालकों की दृष्टि से समान तथा राष्ट्र की दृष्टि से सार्थक हो। पाठ्यवस्तु का स्वरूप उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से सार्थक होना चाहिये।

3. अभिरूचित मानदण्ड से तात्पर्य यह है कि पाठ्यवस्तु के अन्तर्गत ऐसे तथ्यों, विचारों तथा प्रत्ययों को सम्मिलित किया जाय जिससे छात्र में विशिष्ट रुचियों का विकास किया जा सके। कुछ विद्वानों का मत है कि पूर्णरूप से अभिरूचि मानदण्ड की पाठ्यक्रम के निर्माण में महत्व देना चाहिये। पाठ्यवस्तु का स्वरूप ऐसा होना चाहिये। जो छात्रों की रुचियों के अनुरूप हो जिससे छात्र स्वयं रुचि लेंगे। दूसरा शिक्षण के समय उदाहरणों को उनकी रुचियों के अनुरूप दिया जाय। इसका सम्बन्ध शिक्षक से अधिक होता है।

4. सीखने के मानदण्ड का अर्थ होता है कि छात्र पाठ्यवस्तु के स्वरूप कितना सीखते हैं। इस मानदण्ड का सम्बन्ध छात्रों की क्षमताओं तथा योग्यता का पाठ्यवस्तु के स्वरूप से समायोजन या निकटता होनी चाहिये। लिए छात्रों की व्यक्तिगत भिन्नता महत्व घटक होता है। पाठ्यवस्तु के स्वरूप को छात्रों की सीखी हुई से सबन्धित करना चाहिए। छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है।

पाठ्यक्रम में किसी पाठ्यवस्तु को सम्मिलित करने से पूर्व इन मानदण्डों की परख कर लेना नितांत आवश्यक होता है। उत्तम पाठ्यवस्तु वही मानी जाती है जो इन मानदण्डों की पूर्ति करती है। किसी भी मानदण्ड को अलगाव के रूप में प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। परिस्थितियाँ के बदलाव में इन मानदण्डों का महत्व घटता, बढ़ता रहता है। किन्ही विद्यालयों में पाठ्यवस्तु को तथा अन्त में उद्देश्यों को अधिक महत्व दिया जाता है। इसी कारण पाठ्यक्रम का प्रारूप बदलता रहा है—

बाल-केन्द्रित, पाठ्यवस्तु केन्द्रित, उद्देश्य-केन्द्रित तथा अनुभव केन्द्रित, पाठ्यक्रम के प्रकार माने जाते हैं।

पाठ्यवस्तु के स्वरूप के चयन एवं व्यवस्था में अधोलिखित तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है—

1. छात्रों की अभिरुचियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।
2. पाठ्यवस्तु के स्वरूप छात्रों के पूर्व सीखे हुए ज्ञान से

3. पाठ्यवस्तु का स्वरूप छात्रों की क्षमताओं एवं योग्यता के अनुरूप हो।
4. छात्रों की व्यक्तिगत भिन्नता को भी ध्यान में रखा जाय।
5. पाठ्यवस्तु का स्वरूप शुद्ध स्पष्ट हो।
6. पाठ्यवस्तु का स्वरूप छात्रों, समाज तथा विद्यालय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो।
7. पाठ्यवस्तु का स्वरूप के लिये शिक्षण विधियाँ उपलब्ध हो तथा शिक्षक उनका प्रयोग करने में सक्षम हो।
8. पाठ्यवस्तु का स्वरूप से उद्देश्यों की प्राप्ति भी की जा सके।
9. पाठ्यवस्तु को छात्र सीख सके।
10. पाठ्यवस्तु का सम्बन्ध छात्रों के मानसिक, कौशल, अभिरुचित तथा मूल्यों के विकास से हो।

पाठ्यवस्तु के स्वरूप के निर्धारण के लिये विषय-समितियों का गठन किया जाय उनमें अनुभवी शिक्षकों को ही सम्मिलित किया जाय। पाठ्यवस्तु तथा विषय वस्तु के स्वरूप का चयन करते समय परीक्षण तथा मूल्यांकन विधि को भी ध्यान में रखना चाहिये। शिक्षण तथा परीक्षण में पाठ्यवस्तु के स्वरूप के द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। पाठ्यक्रम के निर्माण में परिक्ष्ज्ञण प्रणाली को ध्यान में रखना होता है। पाठ्यक्रम का प्रारूप, परीक्षण प्रणाली के अनुरूप होना चाहिये।

चतुर्थ सोपान-शिक्षण विधियों का चयन तथा व्यवस्था करना
(Selection and Organization of Teaching Method)

पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों को अलग करना बहुत ही कठिन होता है। क्योंकि एक समाप्त होता है दूसरा आरम्भ हो जाता है। शिक्षण विधि का चयन पाठ्यवस्तु के स्वरूप के आधार पर किया जाता है। शिक्षण में छात्र और शिक्षक के मध्य अन्त:प्रक्रिया पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधि की सहायता से होती है। अधिगम परिस्थितियों तथा अवसरों में पाठ्य-वस्तु तथा विधि एक साथ होती है। इस प्रकार अधिगम परिस्थितियों के लिये छात्र, शिक्षक, पाठ्यवस्तु, सहायक सामग्री तथा वातावरण में सम्बन्ध के लिये नियोजन किया जाता है। पाठ्यवस्तु का जिस ढ़ग से प्रस्तुतीकरण किया जाता है उसे शिक्षण विधि कहते हैं।

शिक्षक तथा शिक्षण की सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि दो बालक एक ही अधिगम परिस्थिति में अलग-अलग प्रकार के अनुभव करते हैं। कक्ष में शिक्षक जब कुछ कहता है तब प्रत्येक छात्र अपने ढ़ंग से अनुभव करता है, उसका अर्थ निकालता है, और अपने ढंग से उसे याद रखता है। इस प्रकार शिक्षण की एक ही अधिगम परिस्थिति में छात्रों के सीखने का ढंग अलग-अलग होता है। शिक्षक अपने प्रस्तुतीकरण के द्वारा ऐसे अनुभव प्रदान करे जिससे अपेक्षित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। परन्तु इन परिस्थितियों की उपयुक्ता का बोध परीक्षण से होता है।

पाठ्यक्रम के निर्माण में पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियाँ प्रमुख तत्व होते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षक तथा विद्यालय की प्रभावशीलता के लिये शिक्षक विधियाँ अधिक महत्व रखती हैं। परन्तु यह निर्णय लेना कठिन होता है कि कौन-सी विधि अधिक प्रभावशाली तथा उपयुक्त है क्योंकि प्रभावशीलता का मानदण्ड छात्र का सीखना है। प्रत्येक छात्र के सीखने तथा सोचने का ढंग अलग-अलग होता है। इसलिये शिक्षण विधि की उपयुक्तता छात्रों की दृष्टि से देखनी होती है। आगमन तथा निगमन विधियाँ अधिक प्राचीन हैं परन्तु किन छात्रों के लिए आगमन और किन छात्रों के लिए निगमन उपयुक्त होगी यह कहना कठिन होगा।

आज के सन्दर्भ में शिक्षण विधियों के प्रत्यय एवं स्परूप में भी परिवर्तन हुआ है। शिक्षण विधियों में पाठ्यवस्तु एवं प्रस्तुतीकरण को महत्व दिया जाता है। परन्तु अब पाठ्यवस्तु गौण है उद्देश्यों की प्राप्ति प्रमुख है। शिक्षण आव्यूह द्वारा उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करने का प्रयास किया जाता है। प्रभावशाली

शिक्षण के लिये प्रस्तुतीकरण ही पर्याप्त नहीं है अपितु सम्प्रेक्षण अधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। शिक्षक जो बात छात्रों तक पहुँचाना चाहता है उसके लिये समुचित सम्प्रेक्षण विधि (Communication Strategy) को प्रयुक्त करना होता है। इसके लिये नये प्रत्यय माध्यम (Media) का विकास हुआ है। शिक्षण विधि तथा माध्यम दोनों का चयन करके उसकी व्यवस्था की जाती है यह पाठ्यक्रम के स्वरूप को विकसित करने तथा छात्रों तक पहुँचाने की क्रियायें हैं।

पाठ्यवस्तु की प्रकृति एवं स्वरूप उद्देश्यों, शिक्षण-विधियों, आव्यूहों तथा माध्यमों को प्रभावित करती है। इस क्षेत्र में शोध कार्यों की अधिक आवश्यकता है तभी किसी ठोस बात को कहा जा सकता है। प्राथमिक सतर पर अक्षर ज्ञान के लिए 'कन्डीशनिंग विधि' को प्रयुक्त करते हैं जिसमें अक्षर की ध्वनि को महत्व देते हैं। जैसे 'क' कबुतर, 'ए' एपिल तथा 'बी' बाल आदि, परन्तु अक्षर के स्वरूप को महत्व नहीं दिया जाता है। एक बच्चे को पहले दिन जब विद्यालय भेजा गया तो उसके शिक्षक ने पढ़ाया 'ए' एपिल परन्तु बालक कहता है कि यह एपिल नहीं है यह तो चिम्टा है क्योंकि 'ए' अक्षर का स्वरूप चिम्टे जैसा होता है। यह शिक्षक ने 'बी' को बाल कहा तो बालक ने कहा कि यह बाल नहीं है यह बाबा का चश्मा है क्योंकि बी का आकार बाबा के चश्मे से मिलता है। इसका अर्थ यह हुआ अक्षर ज्ञानप के शिक्षण में ध्वनि एवं स्वरूप दोनों को महत्व देना चाहिये। शुद्ध अक्षर ज्ञान के लिये दोनों ही पक्ष ध्वनि तथा आकार सीखना चहिये।

एक ही प्रकार के उद्देश्यों को विभिन्न प्रकार की पाठ्यवस्तु तथा विभिन्न शिक्षण विधियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार शिक्षक द्वारा विविध एवं लचीली परिस्थिति उत्पन्न करनी होती है।

शिक्षक की भूमिका (Role of Teacher)—शिक्षण विधियों, आव्यूह तथा माध्यमों के चयन एवं व्यवस्था में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि चयन करना ही पर्याप्त नहीं होता है अपितु शिक्षक को उनको प्रयुक्त करके समुचित अधिगम परिस्थिति उत्पन्न करनी होती है और छात्रों को सीखने के अवसर प्रदान होते हैं१ शिक्षक को अपनी क्रियाओं को छात्रों के अधिगम स्वरूपों से सम्बन्धित करना होता है तभी छात्रों में अपेक्षिक व्यवहार परिवर्तन हो सकते हैं और उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। शिक्षक के लिये पाठ्यवस्तु की सहायता से सीखने के अवसरों को समझना और उनके लिये अधिगम परिस्थिति उत्पन्न करना होता है। सीखने के अवसरों के लिये विविध प्रकार की शिक्षण विधियों को प्रयुक्त कर सकते हैं इसलिये उनका चयन करना भी होता है। इसके चयन के आधार पर मूल्यांकन तथा छात्रों की प्रगति प्रमुख है। व्यक्तिगत भिन्नता के सन्दर्भ में अपने अनुभवों को प्रयुक्त करता है।

शिक्षण क्रियाओं का सम्पादन छात्र-शिक्षकों के सम्बन्धों पर आश्रित होता है। छात्र-शिक्षक अन्त:प्रक्रिया और सम्बन्ध शिक्षण विधियों द्वारा निर्धारित होता है। प्रवचन विधि द्वारा सम्बन्ध होते हैं वे प्रश्नोत्तर-विधि द्वारा सम्बन्धों से बिल्कुल भिन्नव होते हैं। शिक्षण की सामाजिक प्रणाली-शिक्षण विधि की प्रकृति पर आधारित होती है। प्रश्नोत्तर विधि में छात्रों एवं शिक्षक में भूमिका समान होती है और प्रवचन विधि में शिक्षक की भूमिका प्रमुख होती है।

विद्यालय की व्यवस्था पर शिक्षण विधियों का चयन निर्भर करता है। प्रभावशाली एवं गतिशील व्यवस्था अधिक लचीली होती है जिसमें नई शिक्षण विधियों को प्रयुक्त करने के अवसर दिये जाते हैं तथा शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाता है। परनतु इन साधनों के लिये पाठ्यक्रम के निर्माण में इनकी व्यवस्था की जाती है।

नये पाठ्यक्रमों के आरम्भ करते समय यह भी विचार किया जाता है कि इन पाठ्यक्रमों का शिक्षण कैसे किया जायेगा तभी पाठ्यक्रम का निर्माण करना सार्थक होता है। पाठ्यक्रम के साथ शिक्षण विधि आव्यूह, माध्यम आदि का भी चयन आवश्यक होता है।

सीखन के अवसरों की व्यवस्था (Organization of Learning Oppertunities)—पाठ्यक्रम निर्माण का प्रमुख कार्य है कि छात्रों के लिये अपेक्षित अधिगम-परिस्थितियों एवं अवसरों की व्यवस्था करना।

उद्देश्यों को प्राप्त करने में अधिक समय लगता है। सीखने के अवसरों की व्यवस्था पाठ्यवस्तु के आधार पर की जाती है। पाठ्यवस्तु का चयन इस प्रकार किया जाये जिससे विभिन्न पाठ्यवस्तु सीखन के अवसरों में सहायक हो तथा पुनर्बलन प्रदान करे। इस तथ्य के लिये निम्न बातों को ध्यान में रखना होता है।

1. नये सीखने के अवसरों को पूर्व अवसरों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। जिसे सतम्भीय सम्बन्ध (Vertical relation) कहते हैं। गणित में गुणा सिखाने के लिये जोड़ आना चाहिये। पाठ्यवस्तु के आन्तरिक स्वरूप में सम्बन्ध स्थापित करना होता है।

2. नये सीखने के अवसरों के लिये विभिन्न विषयों की पाठ्यवस्तु के स्वरूप का चयन इस प्रकार से किया जाये जिससे एक ही प्रकार के या समान सीखने के अवसर दिये जा सकें। जैसे—भारत का भूगोल और भारत का इतिहास एक कक्षा में पढ़ाया जाये। इसे सह सम्बन्ध विधि भी कहते हैं इससे तथ्यों तथा पाठ्यवस्तु को सीखने में सुगमता होती है। इसे क्षैतिजक-सम्बन्ध (Horizontal relation) कहते हैं। विभिन्न विषयों की पाठयवस्तु से एक से ही सीखने के अवसर दिये जा सकें ऐसी पाठ्यवस्तु का चयन करना अधिक उपयुक्त होता है।

3. नये सीखने के अवसरों से उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है इसके लिये उद्देश्यों के व्यावहारिक स्वरूप को अधिगम स्वरूपों के अनुरूप रखना चाहिये। शिक्षण क्रियाओं द्वारा अधिगम-परिस्थितियों द्वारा अपेक्षित व्यवहारों के अनुरूप उत्पन्न करना चाहिये। विभिन्न विषय की पाठ्यवस्तु चयन में अधिगम-परिस्थितियों की समरूपता की महत्व देना चाहिये। पाठ्यवस्तु को व्यवहारों के रूप में समझा जाये।

4. नये सीखने के अवसरों की वयवस्था में शिक्षक के कौशल, छात्रों की क्षमताओं एवं अभिकरुचियों तथा विद्यालय के वातावरण को भी ध्यान में रखकर पाठ्यवस्तु का चयन किया जाये।

पंचम सोपान–परीक्षण तथा मूल्यांकन प्रणाली विधि का निर्धारण करना (Assessment and Evaluation System)

पाठ्यक्रम निर्माण का यह महत्वपूर्ण तथा अन्तिम सोपान है। इसके अन्तर्गत छात्रों की उपलब्धियों तथा व्यवहार परिवर्तन (सीखे हुये अनुभवों) का मूल्यांकन किया जाता है जिससे अहिधगम-परिस्थितायें तथा अवसरों की प्रभाशीलता का बोध होता है। पाठ्यक्रम के स्वरूप की उपयुक्तता की भी जाँच होती है विद्यालय के वातावरण एवं शैक्षिक क्रियाओं की प्रभावशीलता एवं सार्थकता का बोध होता है। इस सोपान में कई कार्य हैं—शिक्षण व छात्रों की पुनर्बलन मिलता है। अधिगम-अवसरों के सुधार के लिये दिशा मिलती है। उद्देश्यों की प्राप्ति किस स्तर तक हुई इसकी जानकारी होती है। डेवीज ने इस सोपान को नियन्त्रण (Controlling) की संज्ञा दी है जो आज के सन्दर्भ में अधिक उपयुक्त है।

पाठयक्रम के प्रारुप से बालकों से ज्ञानात्मक पक्षों के विकास का प्रयास किया जाता है परन्तु परीक्षण के आज भी बालकों के ज्ञानात्मक पक्षों के विकास का ही परीक्षण किया जाता है। सम्पूर्ण अधिगम परिस्थितियों तथा अवसरों का मूल्यांकन नहीं होता है। बी० एस० ब्लूम ने परीक्षा प्रणाली में सुधार हेतु यही सुझाव दिया था कि बालक के सम्पूर्ण व्यवहार परिवर्तनों (ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक) का मूल्यांकन किया जाना चाहिये। आज की परिक्षा प्रणाली का स्वरूप ऐसा ही जो छात्रों को रटने के लिये बाध्य करता है। जो छात्र तथ्यों को रट लेता है वह अच्छे अंक प्राप्त कर लेता है। परीक्षा में नकल करने का अधिक अवसर होता हैं साधारणत: निबन्धात्मक परीक्षाओं का ही प्रयोग किया जाता है। यह परीक्षण प्रणाली दोषपूर्ण है फिर भी सभी स्तरों के परीक्षण में निबन्धात्मक परीक्षा का प्रयोग होता है। चयन परीक्षाओं में जब वस्तुनिष्ठ परीक्षण का प्रयोग किया जाने लगा है। इनका स्वरूप निष्पत्ति परीक्षा का ही है जबकि उद्देश्य-केन्द्रित होना चाहिये और इनका स्वरूप मानदण्ड परीक्षा का होना चाहिये।